21 दिसंबर 2005
सत्र 1

अध्यक्षः प्रोफेसर के.पी. मोहनन

के.पी. मोहननः प्रोफेसर मैथ्यूज़ विज्ञान शिक्षा व संस्कृति में रोशनख्याली (एनलाइटनमेंट)* के बुनियादी योगदान की छानबीन करेंगे।

प्रोफेसर माइकल मैथ्यूज़

रोशनख्याली की छानबीनः विज्ञान शिक्षा का संस्कृति में योगदान

मेरा व्याख्यान वास्तव में काफी लंबा और विस्तृत है। मैं यहां उसे पूरा पढ़ने नहीं जा रहा हूं। मैं कई चीज़ों का उल्लेख भर करूंगा।

विद्या भवन संस्था के बारे में जो कुछ कहा गया है, उससे मैं काफी इत्तफाक रखता हूं। मेरी अपनी शुरुआती पृष्ठभूमि विज्ञान की ही थी। मैंने कुछ वर्ष मनोविज्ञान में बिताए और फिर दर्शन शास्त्र, इतिहास और विज्ञान के दर्शन की ओर बढ़ गया। पिछले कई वर्षों से मेरी रुचि विज्ञान शिक्षा में रही है। इस सबके दौरान, मैंने राजनीति में भी थोड़ी चहलकदमी की है, सिडनी में स्थानीय सरकार में। मेरी अपनी रुचि रोशनख्याली में है। मैं स्वयं को रोशनख्याली के मूल तत्वों के प्रति प्रतिबद्ध महसूस करता हूं। अलबत्ता, मैं यह स्पष्ट कर दूं कि मुझे दुख है कि मेरे पास भारत, भारत के इतिहास व दर्शन के बारे में बहुत कम जानकारी है। जितना कुछ मैं इसके बारे में जानता हूं, उसके आधार पर मैं कह सकता हूं कि मेरा नज़रिया नेहरू के नज़रिए से मेल खाता है। मुझे वैज्ञानिक मिज़ाज या वैज्ञानिक मानसिकता के महत्व का एहसास है। आज मैं यहां इस वैज्ञानिक मिज़ाज की उत्पत्ति की चर्चा करूंगा और इस बात पर चर्चा करूंगा कि इसे बढ़ावा देने में विज्ञान शिक्षा क्या कर सकती है। सम्मेलन के अन्य वक्ता शायद इसे और विस्तार देंगे और स्थानीय संदर्भों में इसकी समीक्षा करेंगे।

तो विषय पर आएं। वैज्ञानिक क्रांति युरोपीय इतिहास में समय के एक स्पष्ट अंतराल में हुई थी - युरोप में सत्रहवीं सदी के 100 सालों में, या जैसा कि मैंने इसे प्रस्तुत किया है 1633 में गैलीलियो की कृति '*टू चीफ वर्ल्ड सिस्टम्स*' के प्रकाशन और 1687 में न्यूटन की पुस्तक '*प्रिंसिपिया मैथेमेटिका*' के प्रकाशन के बीच के 50 सालों में हुई थी। इन पचास सालों में, जो मेरी उम्र से भी कम अवधि है, लगभग एक क्षण में, मानव इतिहास के मात्र एक क्षण में, युरोप में वैज्ञानिक क्रांति हो गई जिसने दुनिया की हमारी पूरी समझ को बदल कर रख दिया और साथ ही हमारी इस समझ को भी बदल डाला कि दुनिया के बारे में ज्ञान कैसे हासिल किया जाए। वैज्ञानिक क्रांति की उपलब्धियां उस समय भी सबको स्पष्ट थीं। न्यूटन के काम को शायद तत्काल मान्यता न मिली हो, मगर काफी तेज़ी से इसे समूचे युरोप में स्वीकार कर लिया गया था। स्वयं न्यूटन का मत था कि विज्ञान में उनकी उपलब्धियों, और जिस पद्धति ने विज्ञान में उनकी महती उपलब्धियों को संभव बनाया था, उनका असर मानव जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी छलकेगा। उन्होंने अपनी मशहूर कृति '*दी ऑप्टिक्स*' में यह बात स्पष्ट रूप से कही थी कि यदि उनकी पद्धति को अन्य क्षेत्रों में लागू किया जाए, तो इसी तरह के लाभ मिल सकते हैं।

न सिर्फ न्यूटन, बल्कि युरोप के कई महत्वपूर्ण व्यक्ति मानते थे कि नवीन विज्ञान की विधियां, जिन्हें गैलीलियो ने शुरू किया था और न्यूटन ने उत्कृष्टता तक पहुंचाया था, यह वैज्ञानिक विधि अन्य क्षेत्रों को भी प्रभावित कर सकती है। जो लोग इस बात को मानते थे, जो सोचते थे कि वैज्ञानिक तरीके को राजनीति, धर्म, अर्थशास्त्र, सामाजिक दायरों, कानून वगैरह में लाभदायक ढंग से लागू किया जा सकता है, ये लोग उस समूह के सदस्य थे जिन्हें युरोपियन रोशनख्याली का निर्माता कहा जाता है।

युरोपियन रोखनख्याली 18वीं सदी में घटित हुई। एक मायने में इसका काल-विभाजन आसान है - इसके शुरुआती 50 सालों को शुरुआती रोशनख्याली कहा जा सकता है। स्वयं अपना परिचय 'न्यूटन के बगीचे में एक श्रमिक' के रूप में देने वाले लॉके ने छः साल की अवधि में पांच महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी थीं। इन पुस्तकों ने युरोपियन रोशनख्याली की बुनियाद रखी थी। लॉके, लीबनिज़, वॉल्टेयर और अहम रूप से डेविड ह्यूम, तथा रोशनख्याली के द्वितीय पचास वर्षों में ह्यूम, डी'एलेम्बर्ट, रूसो, गिबन, कान्ट, बुर्के, संयुक्त राज्य में पैन और संयुक्त राज्य के संस्थापक गण, इन सब विभूतियों ने रोशनख्याली की विचारधारा (आडियोलॉजी) का विकास किया था।

---

*एनलाइटनमेंट के लिए मैंने रोशनख्याली शब्द का उपयोग किया है। वैसे परंपरागत तौर पर इसके लिए नव जागरण का इस्तेमाल होता रहा है मगर वह रिनेसां के लिए ठीक लगता है। - अनुवादक

आज की वार्ता में मेरा सरोकार इस बात से है कि आपको इस बात का एहसास दूं कि रोशनख्याली की इन रचनाओं के मद्दे नज़र विज्ञान शिक्षा की उत्पत्ति और सामाजिक विचारों से उसकी कड़ियों की पुनः पड़ताल कर सकती है। यह सही है कि रोशनख्याली निहायत पेचीदा है। इसमें योगदान देने वाले लेखक अनगिनत हैं। यह तो एक कारवां है जिसमें लोग अपने-अपने झंडे-बैनर उठाए चल रहे हैं। कुछ बैनर एक-दूसरे के विरोधाभासी हैं, कुछ बैनर मोटे अक्षरों में लिखे गए हैं तो कुछ बैनर बारीक अक्षरों में। यह काफी मिली-जुली या विषमांग चीज़ थी और यह सार निकालना थोड़ा मुश्किल है कि रोशनख्याली के संकल्प क्या हैं। मगर खुशी की बात है कि हमारे लिए यह काम एक कैथोलिक पोप - पोप पायस चतुर्दश - ने कर दिया है। उन्होंने 1864 में एक रचना प्रसारित की थी जिसे '*दी सिलेबस ऑफ एरर्स*' (त्रुटियों का पाठ्यक्रम) कहा जाता है। पायस चतुर्दश ने रोशनख्याली में 80 त्रुटियां चिन्हित की थीं, जिन पर विश्वास करना निंदा और कैथोलिक चर्च से बहिष्कार का सबब बनेगा। उक्त 80 त्रुटियां रोशनख्याली के सोच की बहुत उम्दा मार्गदर्शिका हैं। एक तरह से हम कह सकते हैं कि यदि कोई व्यक्ति रोशनख्याली का समर्थन करना चाहे, तो उसे मात्र इतना करना होगा कि पोप द्वारा चिन्हित हर त्रुटि पर कहे, हां, मैं इस त्रुटि पर यकीन करता/ती हूं। मैंने कुछ त्रुटियां चुनी हैं; मैं इनमें विस्तार में नहीं जाऊंगा।

त्रुटि क्रमांक 3. मानव तर्क ही सच-झूठ का तथा अच्छे-बुरे का एकमात्र निर्णयकर्ता है, इसमें ईश्वर के उल्लेख की कोई ज़रूरत नहीं है। यह (मानव तर्क) स्वयं कानून है और अपनी कुदरती शक्ति के दम पर यह मनुष्यों और राष्ट्रों की खुशहाली सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त है।

ज़ाहिर है यह त्रुटि - तर्क में विश्वास - रोशनख्याली का प्रमुख विश्वास था और पोप पायस ने इसे प्रमुख विश्वास के रूप में सही चिन्हित किया है। उनका ख्याल था कि यह एक भयानक गलती है। रोशनख्याली का विचार था कि यह एक गलती नहीं है, यह सत्य है।

त्रुटि क्रमांक 5. इल्हाम (श्रुति) अधूरा है और इसलिए मानव तर्क में प्रगति के साथ-साथ इसमें भी निरंतर व असीमित प्रगति की गुंजाइश है।

यह भी रोशनख्याली का प्रमुख संकल्प था कि ईश्वरीय इल्हाम जैसा कुछ नहीं होता। ईसाई धर्मग्रंथ या कोई अन्य धर्मग्रंथ, इस्लामिक धर्मग्रंथ, हिंदू धर्मग्रंथ, सारे धर्मग्रंथ मात्र मानव कृतियां हैं, किसी ईश्वर द्वारा प्रकटित ज्ञान नहीं हैं। आप कह सकते हैं कि यह रोशनख्याली की अपेक्षाकृत नास्तिक व्याख्या है। इस तरह की कई व्याख्याएं थीं। अपेक्षाकृत मध्यमार्गी व्याख्या यह थी कि चलो मान लिया कि ये ग्रंथ इल्हाम के द्योतक हैं, मगर इन इल्हाम को समझने व इनकी व्याख्या करने, किसी ग्रंथ को समझने का एकमात्र तरीका यही है कि तर्क का उपयोग किया जाए। लिहाज़ा, चाहे आप किसी चीज़ इल्हाम मानें या न मानें, इसका अर्थ निकालने के लिए तर्क की ज़रूरत होगी और इस तर्क का उपयोग किसी भी सत्ता से स्वतंत्र करना होगा। खास तौर से युरोप में तर्क का उपयोग किसी भी धार्मिक या चर्च सत्ता से स्वतंत्र लागू करना लाज़मी था। पायस चतुर्दश द्वारा रोशनख्याली के इस संकल्प को चिन्हित करके निंदा करना उचित ही था।

और भी देख सकते हैं, जैसे त्रुटि क्रमांक 10 का ज़िक्र करूंगा।

त्रुटि क्रमांक 10. चूंकि दार्शनिक और दर्शन दो अलग-अलग चीज़ हैं, इसलिए यह दार्शनिक का अधिकार व कर्तव्य है कि वह स्वयं को उस सत्ता के अधीन करे जिसे उसने सत्य प्रमाणित कर दिया हो, मगर दर्शन को ऐसी किसी सत्ता के अधीन न तो रखा जा सकता है, न रखा जाना चाहिए।

यह एक महत्वपूर्ण बिंदु था। आप कह सकते हैं कि रोशनख्याली के मध्यमार्गी विचारक मानते थे कि एक व्यक्ति के रूप में दार्शनिक नागरिक होगा, उसे टैक्स चुकाना होगा, उसे ट्राफिक के नियमों का पालन करना होगा, देश के कानून को मानना होगा, वगैरह। एक नागरिक के रूप में दार्शनिक को राजा की बात माननी होगी, मगर स्वयं दर्शन को किसी सत्ता के अधीन होने की ज़रूरत नहीं है। यह रोशनख्याली का एक अहम बिंदु था कि दर्शन को स्वायत्त होना चाहिए और इस बात को रोशनख्याली की परंपरा ने रेखांकित किया है जबकि इसके विपरीत विभिन्न मार्क्सवादी प्रयास इस दिशा में रहे हैं कि दर्शन पर मार्क्सवाद-लेनिनवाद थोपा जाए ताकि दर्शन को स्टालिनवादी सिद्धांतों के अनुरूप ढाला जा सके; इसी प्रकार से कई इस्लामिक देशों में दर्शन को इस्लामी सत्ता के अनुरूप बनाने के प्रयास हुए हैं। यह सब रोशनख्याली के विचारकों के इस विश्वास के विपरीत है कि दर्शन एक स्वतंत्र *सुई जेनेरिस* (अपने ढंग की) गतिविधि है।

मैं सिर्फ आखरी त्रुटि की चर्चा और करूंगा। मेरी अपनी परवरिश रोमन कैथोलिक ढंग से हुई है और एक समय पर मैं रोमन कैथोलिक पुरोहित बनने की दहलीज़ पर था। लिहाज़ा रोमन कैथोलिक चर्च से सम्बंधित मसलों में मेरी खास रुचि है। पायस द्वारा चिन्हित अंतिम त्रुटि हैः

त्रुटि क्रमांक 80. स्वयं रोमन पोप को प्रगति, उदारवाद और आधुनिक सभ्यता के साथ तालमेल बनाना चाहिए, स्वीकार करना चाहिए और कर सकते हैं।

ज़ाहिर है, रोशनख्याली के विचारक मानते थे कि ऐसा ही होना चाहिए और पायस का मत था कि यह एक गंभीर भूल है।

मैंने कहा था कि रोशनख्याली का सार निकालना मुश्किल काम है, एक मुश्किल ऐतिहासिक कवायद है, एक कठिन दार्शनिक कवायद है। मैंने रोशनख्याली के 10 संकल्प खोजने की कोशिश की है। ये दस संकल्प हैं:

1. *सार्वभौमिकता* (*Universalism*): समस्त सामान्य मनुष्यों की प्रकृति समान है और तद्नुसार वे ज्ञान अर्जित करने में सक्षम हैं और बराबरी से आचार-नीतिक मापदंडों के अधीन हैं।

2. *वस्तुनिष्ठतावाद* (*Objectivism*): सामान्य या विशिष्ट, दोनों तरह के तथ्यों के मामले में एक वस्तुनिष्ठ अर्थ होता है, व्यक्ति से निरपेक्ष और लिहाज़ा सार्वभौमिक सत्य या असत्य होते हैं। एक बार खोजे जाने के बाद सत्य सबके लिए सत्य होते हैं, वे हिंदुओं के लिए उतने ही सत्य होते हैं जितने मुस्लिमों के लिए, वे पुरुषों के लिए सत्य होते हैं, स्त्रियों के लिए सत्य होते हैं, और वे नास्तिकों और आस्तिकों दोनों के लिए सत्य होते हैं।

3. *तर्क* (*Reason*): व्यक्ति सिद्धांततः किसी भी तथ्य सम्बंधी स्थापना के सत्य-असत्य का निर्धारण करने में समर्थ होते हैं, अर्थात दुनिया ज्ञेय है, अज्ञेय नहीं है।

4. *अनुभवजन्यता* (*Empiricism*): तथ्यों के मामले तय करने के लिए संवेदी प्रमाण ज़रूरी होता है। तथ्यों के संदर्भ में यदि हमारे पास संवेदी प्रमाण न हों, तो हम तथ्यों की सत्यता अथवा असत्यता का फैसला नहीं कर सकते। (ज़ाहिर है, ये सारे विवादास्पद हैं और इनका और खुलासा करने की ज़रूरत है।)

5. *विज्ञानवाद* (*Scientism*): नवीन भौतिक विज्ञान की विधि को सामाजिक, राजनैतिक, नैतिक व धार्मिक अन्वेषणों में लागू करने की ज़रूरत है ताकि इन क्षेत्रों में ज्ञान प्राप्त किया जा सके।

वैज्ञानिक विधि को अर्थशात्र, समाज शास्त्र, मनोविज्ञान, साहित्य, इतिहास वगैरह में लागू करना तो यकीनन काफी बहस का विषय रहा है। रोशनख्याली की विभूतियों का कहना था कि हां, यदि आप इन सारे क्षेत्रों में ज्ञान हासिल करना चाहते हैं, तो आपको वैज्ञानिक विधि अपनाना होगी। वैज्ञानिक विधि के अलावा इन क्षेत्रों में ज्ञान का कोई मार्ग नहीं है।

6. *इल्हाम-विरोधी* (*Anti-Revelationism*): मैं ज़्यादा खुलासा नहीं करूंगा, रोशनख्याली ने इल्हाम या श्रुति के विचार को सिरे से खारिज कर दिया था। इल्हाम जैसी कोई चीज़ नहीं है।

अपेक्षाकृत मध्यमार्गी मत यह था कि यदि इल्हाम जैसी कोई चीज़ है, तो इसकी व्याख्या करनी होगी और इसकी व्याख्या वैज्ञानिक विधि से ही की जा सकती है। इस मुद्दे का आगाज़ गैलीलियो और गैलीलियो के इस विश्वास की निंदा के साथ हुआ था कि धर्मग्रंथ, जो पृथ्वीकेंद्रित था, सरासर गलत है और इसकी पुनर्व्याख्या उस समय के सर्वोत्तम विज्ञान के अनुसार करने की ज़रूरत है, जो सूर्यकेंद्रित था।

7. *प्रकृतिवाद* (*Naturalism*): दुनिया में मात्र वही इकाइयां मौजूद हैं, जिन्हें विज्ञान ने प्रकट किया है और वही दुनिया की घटनाओं की व्याख्या में सक्षम हो सकती हैं। इसका अगला कदम पदार्थवाद हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। रोशनख्याली के कुछ विचारक पदार्थवादी थे; कुछ अन्य लेखक पदार्थवादी नहीं थे। वैज्ञानिक क्रांति के समय ढेरों दैत्य, भूत, प्रेत और इसी तरह की अन्य चीज़ें बढ़ने लगी थीं। इन्हें व साथ में मिथकों और अंधविश्वासों को खारिज करना ज़रूरी था। रोशनख्याली ने बस यह कहा कि ये सब अस्वीकार्य हैं और प्राकृतिक अथवा मानव घटनाओं की व्याख्या के लिए इनका सहारा नहीं लिया जा सकता।

8. *उपयोगितावाद* (*Utilitarianism*): आचरण के मापदंड निजी और सामाजिक उपयोगिता के आधार पर निर्मित किए जाने चाहिए, न कि इल्हामी धर्म या किसी अनुमानित गैर-तत्वशास्त्रीय (putative de-ontological) आधार पर। यह बहस का विषय था किन्तु रोशनख्याली के विचारकों का ज़ोर इस बात पर था कि आचार-नीति की कसौटी आचरण में है। यदि आपके पास कोई आचार संहिता है जो कामकाज में नाखुशी पैदा करती है, जिसे वास्तव में जीया नहीं जा सकता, तो उस आचार संहिता में कुछ गड़बड़ी है।

9. *आशावाद* (*Optimism*): मनुष्य और मनुष्य के हालात दोनों ऐसी चीज़ें हैं जिनमें उचित तर्क और सही आचरण लागू करके बेहतरी लाई जा सकती है।

10. *स्वतंत्रता* (*Independence*): धर्म निरपेक्ष या धार्मिक सत्ताओं, राज्य या चर्च के पास ऐसे कोई विशेष साधन नहीं हैं जिनकी मदद से वे दुनिया के बारे में या आचरण नीति या राजनीति बारे में या यहां तक कि धर्म के बारे में सत्य का निर्धारण कर सकें। सही विधि का उपयोग करते हुए निजी तर्क का दावा किसी भी आधिकारिक फतवे से ऊपर

है।

रोशनख्याली के इन 10 तत्वों को विस्तार दिया जा सकता है और ग्रंथों के उद्धरण दिए जा सकते हैं। मैं वह नहीं करना चाहता। अपनी बात समाप्त करने से पहले मैं थोड़ा विस्तार में जाकर कहूंगा कि रोशनख्याली के प्रोजेक्ट में या रोशनख्याली की विचारधारा में आत्म-सुधार अंतर्निहित था - दूसरे शब्दों में रोशनख्याली स्वयं अपनी रोशनख्याली के प्रति चिंतित थी। यदि हम रोशनख्याली को देखें और कहें कि 'ये डेविड ह्यूम, थॉमस पैन, जॉन लॉके, थॉमस जेफरसन के पवित्र ग्रंथ हैं और हम इनसे विचलित नहीं हो सकते, या इनमें कुछ जोड़ नहीं सकते या इन पवित्र ग्रंथों की पुनर्व्याख्या नहीं कर सकते', तो यह एक बुनियादपरस्त भूल होगी जो हिंदुत्व या ईसाईयत या इस्लाम की बुनियादपरस्ती के तुल्य होगी, कट्टरपंथी सोच होगा। धर्मों में कट्टरपंथी सोच उन सारे धर्मों में बेवकूफियों को जन्म देता है जो अपने धर्मग्रंथों का कट्टरपंथी नज़रिया अपनाते हैं। रोशनख्याली की परंपरा अपने ग्रंथों के ऐसे कट्टर नज़रिए को घृणित मानेगी। तो रोशनख्याली प्रोजेक्ट के बारे में सबसे पहली बात मैं यही कहना चाहूंगा कि यह एक प्रोजेक्ट है जिसमें आत्म-सुधार निहित है।

मैंने अपने हिसाब से रोशनख्याली के 10 केंद्रीय उसूलों की रूपरेखा प्रस्तुत करने की कोशिश की है। मैं इन्हें 10 कमांडमेंट्स नहीं कहना चाहता क्योंकि उससे गलत संदेश जाएगा। ये दस सिद्धांत या उसूल हैं जिनके आधार पर रोशनख्याली के विचारक खुद को व्यवस्थित करने का प्रयास करते हैं। यदि इनमें से कोई गलत निष्कर्ष की ओर ले जाता है, तो आप उस सिद्धांत को हटा देते हैं।

शैक्षिक अवसर - यह सब हमें कहां ले जाता है? इस पर्चे के पूर्ण स्वरूप (जो डॉ. शुक्ला के पास है, जो इस पर टिप्पणी करने वाले हैं) के परिचयात्मक तर्क में आपको ये चार मान्यताएं मिलेंगीः

1. शिक्षा से निजी व सामाजिक बेहतरी हासिल होनी चाहिए।
2. विज्ञान शिक्षा ने निजी व सामाजिक बेहतरी में विशेष योगदान देना चाहिए।
3. विज्ञान के छात्रों को सीखना चाहिए कि विज्ञान और संस्कृति का एक अंतर्क्रियात्मक संवाद रहा है और आज भी है। कि न सिर्फ विज्ञान और टेक्नॉलॉजी के बीच (वह तो ज़ाहिर है) बल्कि विज्ञान और संस्कृति के बीच, विज्ञान और दुनिया व मानव जीवन के बारे में सोचने के तरीकों के बीच हमेशा एक संवाद का इतिहास रहा है।
4. यह विज्ञान का एक निहायत युरोप-केंद्रित नज़रिया है। मैं अपनी सीमाएं आपके समक्ष रख देता हूं। युरोपीय लोगों के लिए विज्ञान व समाज और संस्कृति के बीच अंतर्क्रिया का सर्वप्रथम व सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण 18वीं सदी में युरोपीय रोशनख्याली का आगाज़ था जिसका सूत्रपात 17वीं सदी की वैज्ञानिक क्रांति की हैरतअंगेज़ घटना ने किया था।

यदि हम इन चार बातों को मान लें, तो मेरा निष्कर्ष यह होगा कि विज्ञान पढ़ रहे विद्यार्थियों को युरोपीय रोशनख्याली के बारे में कुछ-न-कुछ ज़रूर सीखना चाहिए। युरोपीय रोशनख्याली के बारे में सीखने के बाद आप छात्रों और शिक्षकों से कह सकते हैं कि गेंद अब उनके पाले में है। जो कुछ उन्होंने सीखा है, उसका वे क्या करते हैं, यह सीखनेवाले पर है, जैसा कि सीखने की किसी भी परिस्थिति में होता है। युरोपीय रोशनख्याली की छानबीन कीजिए, यह देखिए कि क्या हुआ था और किस संदर्भ में हुआ था, उसकी खूबियां व कमज़ोरियां देखिए। इसके बाद छात्र और शिक्षक स्वयं फैसला कर सकते हैं कि रोशनख्याली के कौन-से उसूलों को वे स्वीकार करना चाहेंगे, और किन उसूलों को, पायस चतुर्दश के समान, वे बड़ी त्रुटियां मानेंगे। मैं यहीं समाप्त करता हूं। शुक्रिया।

के. पी. मोहननः मैं अब प्रोफेसर आगम शुक्ला को पर्चे पर टिप्पणी के लिए आमंत्रित करता हूं।

प्रोफेसर आगम शुक्ला

शुक्रिया प्रोफेसर मोहनन। मेरे सामने जो काम है, वह काफी मुश्किल है और सिर्फ आयोजकों के आग्रह के चलते मैंने इसे स्वीकार किया है। मगर प्रोफेसर मैथ्यूज़ के साथ चंद मिनट बातचीत के बाद मेरा तनाव कुछ कम हो गया कि हमारी स्थितियों में व्यापक अंतरों के बावजूद मैं सार्थक ढंग से मतभेदों या भिन्नताओं को प्रस्तुत कर सकूंगा।

पहले मैं कुछ कहना चाहूंगा जिसका सीधा सम्बंध प्रोफेसर मैथ्यूज़ के पर्चे से नहीं है बल्कि श्री जगत मेहता के उद्घाटन भाषण से है। मेरे ख्याल में उन्होंने कई ऐसी बातें कहीं जो वैज्ञानिक तार्किकता के लिए बड़ी प्रिय और महत्वपूर्ण हैं, हालांकि उन्होंने इस शब्द का उपयोग नहीं किया था। वह चीज़ है आलोचना और आत्म-आलोचना का तरीका। उन्होंने सही कहा कि यह बहस और विचार-विमर्श मूलतः मध्यम वर्ग के बीच है और इस बात की बहुत आशंका है कि हम आलोचना करेंगे मगर आत्म-आलोचना नहीं। वास्तव में मुझे लगता है कि प्रोफेसर मैथ्यूज़ के पर्चे पर इस चर्चा का सम्बंध इस बात से है कि जो लोग वैज्ञानिक तार्किकता को समाजिक प्रगति की प्रक्रिया से जोड़ने के प्रति प्रतिबद्ध हैं, उन्हें इस संदर्भ में आत्म-आलोचना सीखनी चाहिए कि क्यों हम उतने प्रभावी नहीं हुए जितना होना चाहिए था।

मुझे लगता है हमारा प्रयास यह है कि यह देख पाएं कि क्या हम बेहतर कर सकते हैं। अगली बात, मैं एक टिप्पणी करना चाहूंगा जिसे मेटा-परिकल्पना कहूंगा ताकि मैं जो कहने जा रहा हूं उसकी सत्य निष्ठता या व्यक्तिनिष्ठता को किसी तरह परिभाषित कर सकूं। यह डारविन का एक उद्धरण है जो मैंने हाल ही में पढ़ा था (यह पॉपर से बहुत पहले का है): "परिकल्पना के बगैर कोई उपयोगी अवलोकन नहीं हो सकता या मैं यह कहूंगा कि परिकल्पना के बगैर कोई विज्ञान नहीं हो सकता।"

तो मैं दो परिकल्पनाएं बनाऊंगा और उन परिकल्पनाओं के बाद जो कुछ आएगा, उसे आप बहुत ठोंक-बजाकर स्वीकार कीजिए क्योंकि ये मेरे अपने काल्पनिक एहसास हैं। मेरी शून्य परिकल्पना यह है कि दुनिया के मज़दूर वैश्वीकृत हों। हम एक ऐसी दुनिया में जी रहे हैं जहां वैश्वीकरण हर तरफ है। प्रोफेसर मैथ्यूज़ का यहां आना और विज्ञान के विकास में रोशनख्याली के महत्व की बात करना, वैश्वीकरण की प्रक्रिया का ही हिस्सा है। मगर थोड़े अलग तरह के वैश्वीकरण भी हो रहे हैं, और यहीं मेरी शून्य परिकल्पना उभरती है कि हम सब वैज्ञानिक कामगार हैं और डेढ़ सौ साल पहले मार्क्स और एंगेल्स ने जो नारा दिया था, उसे आधुनिक बनाकर 'दुनिया के मज़दूरों वैश्वीकृत हो' करने की ज़रूरत है। मेरी अनंत परिकल्पना, जिसके बीच बारीकियां फैली हुई हैं, पौल रोबसन का एक कथन है, जिससे आप सब वाकिफ होंगे: "पूरा है विश्वास, मन में है विश्वास, हम होंगे कामयाब एक दिन।"

तो जैसा कि प्रोफेसर मैथ्यूज़ ने कहा, हमें आशावादी होना चाहिए, मगर आशावाद का एक संदर्भ होना चाहिए।

इन टिप्पणियों के बाद, मैं कहना चाहूंगा कि प्रोफेसर मैथ्यूज़ के पर्चे के साथ संवाद करने में दिक्कत यह है कि हमारे देखने के स्थान इतने अलग-अलग हैं। हम बागड़ के विपरीत पालों में हैं। वैश्वीकरण की जिस प्रक्रिया का ज़िक्र मैंने किया, वह 500 सालों से चली आ रही पूंजीवादी, साम्राज्यवादी वैश्वीकरण की प्रक्रिया है। संयोग से मैथ्यूज़ साम्राज्यवाद की तरफ हैं और मैं उपनिवेश की तरफ हूं। हमें समूची दुनिया, रोशनख्याली समेत, बहुत अलग-अलग दिखती है।

तो फर्क की रेखा खींचने के बाद पहले कुछ सहमतियां बता दूं। हम दोनों सहमत हैं कि विज्ञान शिक्षा और संस्कृति में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण हैं। हम इस बात पर भी एकमत हैं कि विज्ञान की तार्किकता के विकास में और विज्ञान शिक्षा को हमारी संस्कृति का एक अंग बनाने में रोशनख्याली एक महत्वपूर्ण कदम था। मगर इसके बाद तथ्य यह है कि रोशनख्याली के सारे के सारे विचारक मूलतः अपनी युरोप-केंद्रित विश्व दृष्टि में सिमटे हुए थे। घोषित रूप से न सही, मगर अघोषित रूप से वे उस ऐतिहासिक प्रक्रिया के शिकार हुए थे, जिसे *व्हाइट मैन्स बर्डन* (यह एक मुहावरा है जिसका मतलब है कि गोरे लोग मानते हैं कि दुनिया को सभ्य बनाने का बोझ उनके कंधे पर है) कहा जाता है। लिहाज़ा तथ्य यह है कि पूरी औपनिवेशिक दुनिया को लेकर घोर संवेदनहीनता, और युरोप में पूंजीवादी व्यवस्था के उभार ने साम्राज्यवाद को बदतरीन बनाया।

हालांकि मैं सहमत हूं कि विज्ञान के छात्र के लिए इतिहास के प्रति संवेदनशीलता बहुत महत्वपूर्ण है, मगर भारतीय संदर्भ में कोई छात्र रोशनख्याली को उतने ही चमचमाते प्रकाश में नहीं देख सकता जैसे प्रोफेसर मैथ्यूज़ सुझा रहे हैं। बल्कि मैं तो कहूंगा कि भारत के संदर्भ में एक ऐतिहासिक एहसास विकसित करने के लिए पिछले 60 सालों का घटनाक्रम ज़्यादा महत्व रखता है, जहां साहा बनाम भाभा के विकल्पों के बीच चयन एक अहम मुद्दा है। दुर्भाग्य से भारत में जिस नीति को स्वीकार किया गया है और जिसे लागू किया जा रहा वह भाभा की अभिजात्यवादी विज्ञान की नीति है। उस नीति को खारिज कर दिया गया है, जो राष्ट्रीय आंदोलन का अंग थी और साहा ने जिसकी रूपरेखा बनाई थी जिसमें विज्ञान को सामाजिक व सांस्कृतिक आंदोलन का हिस्सा बनाने की बात थी। तो भारत के संदर्भ में विज्ञान के छात्र के लिए रोशनख्याली की बजाय इस तरह के ऐतिहासिक एहसास की ज़रूरत है।

मगर वह एक अलग बहस है जो इस पर्चे से सम्बंधित नहीं है। चूंकि मेरे पास इस पर्चे पर कोई टिप्पणी नहीं है, इसलिए मैं अब उस हिस्से को लेता हूं जिस पर, मुझे खुशी है कि, उन्होंने काफी समय लगाया। जिन्हें वे रोशनख्याली की विचारधारा के दस सिद्धांत कहते हैं - सार्वभौमिकता से लेकर स्वतंत्रता तक। जो दस सिद्धांत उन्होंने गिनाए हैं, वे किसी गेस्टाल्ट की उक्तियों जैसे हैं, जिनकी मदद से हम रोशनख्याली की प्रक्रिया का पूरा चित्र बनाने की कोशिश करते हैं। इस मामले में मेरी टिप्पणी यह है कि एक गेस्टाल्ट के बिंदुओं के आधार पर एक संश्लेषित समष्टि की रचना करने की कोशिश सचमुच बहुत अच्छी कवायद है मगर द्वन्द्वात्मक दृष्टि से मुझे लगता है कि ये बिंदु एकतरफा विरोधाभास हैं। सिर्फ वस्तुनिष्ठता की बात करना और वस्तुनिष्ठता व व्यक्तिनिष्ठता के बीच के अंतर्विरोध की चर्चा न करना निहायत अधूरा है। मैं कहूंगा कि यह बदकिस्मती है कि रोशनख्याली ने किया यह या उसका परिणाम यह हुआ कि वस्तुनिष्ठता को इतना अधिक महत्व दिया गया है कि व्यक्तिनिष्ठता के महत्व को यों दबा दिया गया है गोया सारी व्यक्तिनिष्ठता वैचारिक अंधविश्वास हो। मेरे ख्याल में यह घोर आपत्तिजनक है। बदकिस्मती से एक ढंग की

मशीनी तार्किकता बहुत हावी हो गई है और निश्चित रूप से रोशनख्याली की वैज्ञानिकता ने इस मशीनी तार्किकता में योगदान दिया है। मुझे यह दिखता है कि अंतर्विरोध में एक पक्ष को दूसरे पक्ष के दमन की कीमत पर खूब बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया गया है, जैसा मैंने वस्तुनिष्ठता बनाम व्यक्तिनिष्ठता का उदाहरण दिया। एक तीखे जुम्ले का उपयोग करें, तो कहा जाएगा कि ध्रुवीकरण को विकृत करके जड़ सत्य बना दिया गया। किसी भी ध्रुवीकरण को एक भले शब्द और एक बुरे शब्द से परिभाषित किया जाता है। तो यहां वस्तुनिष्ठता भला शब्द हो गया, व्यक्तिनिष्ठता बुरा शब्द हो गया। सार्वभौमिकता एक भला शब्द हो गया और स्थानीय विविधता बुरा शब्द हो गया।

यही स्थिति उस बिंदु की है जिसे उन्होंने विज्ञानवाद (Scientism) कहा। इसमें उन्होंने कहा कि नए भौतिक विज्ञानों की विधियों का उपयोग सामाजिक विज्ञानों या धर्म या मानव अन्वेषण के अन्य विषयों में भी किया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी सही कहा कि यह बात अत्यंत विवादास्पद है। खास तौर से अब इस पर काफी गंभीर सवाल उठ रहे हैं कि क्या वैज्ञानिक विषयों की ऐसी ऊंच-नीच स्थापित करने का कोई तर्कसंगत अर्थ भी है। तो तथ्य यह है कि हो सकता है कि रोशनख्याली तार्किकता के एक बहुत अहम आंदोलन के रूप में शुरू हुई थी, मगर जिस रूप में प्रोफेसर मैथ्यूज़ जैसे व्यक्ति इसे देखते हैं, और जिस ढंग से भारत जैसे परिवेश के लोग देखते हैं, उनमें काफी अंतर हैं।

अपनी बात को और स्पष्ट करने के लिए मैं भले शब्द-बुरे शब्द की एक और जोड़ी पेश करता हूं - विश्लेषण बनाम संश्लेषण। रोशनख्याली से विकसित हुई वैज्ञानिक विधि विश्लेषण में तो खूब आगे है मगर संश्लेषण में बहुत पीछे। हालांकि जैसा कि हम जानते हैं, आप विश्लेषण उसी चीज़ का कर सकते हैं जो अपने पूर्ण रूप में मौजूद हो, और यदि आपका विश्लेषण अर्थपूर्ण है, तो इस विश्लेषण में से आप एक उच्चतर संश्लेषण की रचना करते हैं। इसलिए, रोशनख्याली को सौ सालों की अवधि के एक झरोखे के रूप में देखना, और इसे 500 साल के वैश्वीकरण से अलग-थलग करके देखना मेरे ख्याल में बहुत मशीनी नज़रिया है। भारत में किसी छात्र के लिए मात्र सौ सालों का यह झरोखा नहीं बल्कि 500 से अधिक सालों की आधुनिकीकरण की प्रक्रिया - अभिशाप और वरदान का मिला-जुला रूप है। तथ्य यह है कि कहीं न कहीं यह भौगोलिक क्षेत्र ऐतिहासिक ठहराव का शिकार था। युरोप में पूंजीवादी भौतिकवादी विकास के रूप में जो आधुनिकीकरण हुआ, उसने भारत जैसे देश के विकास में एक सकारात्मक भूमिका तो निभाई मगर इस पूंजीवादी-साम्राज्यवादी व्यवस्था का साम्राज्यवादी अंग निहायत नकारात्मक था। तो सौ साल की रोशनख्याली को एक ऐसे आंदोलन के रूप में देखना होगा जो 500 तक चली और आज भी चल रही वैश्वीकरण की प्रक्रिया का हिस्सा है। भारतीय समाज और खासकर वैज्ञानिक व अन्य बुद्धिजीवियों को इस चीज़ को पकड़ना होगा। मैं अपनी बात यहीं समाप्त करता हूं।

चर्चा

मोहननः डॉ. शुक्ला, मैं यह सोच रहा हूं कि प्रोफेसर मैथ्यूज़ के पर्चे की यह समीक्षा खुद ही रोशनख्याली की परंपरा की एक सुंदर बानगी है। यदि रोशनख्याली के विचारक यहां होते, तो कहते, 'हां, यही तो हम चाहते हैं।' प्रोफेसर मैथ्यूज़ को सुनते हुए मैं यह भी सोच रहा था कि यदि रोशनख्याली का मूल यही है कि धार्मिक व धर्म निरपेक्ष सत्ताओं को नकारा जाए, अंधी आस्थाओं और सत्ता की संस्कृति की बजाय शंका और सवालिया संस्कृति को बढ़ावा दिया जाए, तो यही संस्कृति हमें यूनान की सुकरात-पूर्व और सुकरातकालीन परंपराओं में भी मिलती है और शंका व सवाल करने की बौद्ध परंपरा में भी हमें यही संस्कृति नज़र आती है। बुद्ध कहते हैं, "सत्ता (authority) पर भरोसा मत करो, मुझ पर भरोसा मत करो, अपने अनुभव और तर्क पर चलो।" मुझे लगता है, जिसे हम रोशनख्याली की परंपरा कहते हैं, वह कई संस्कृतियों में मौजूद है।

मीरा नंदाः रोशनख्याली के युरोप-केंद्रित होने सम्बंधी प्रोफेसर शुक्ला की टिप्पणी में मैं कुछ सुधार करना चाहूंगी। यदि आप किताबें पढ़ें, खासकर 18वीं सदी के फ्रांसिसी रोशनख्याली की रचनाएं पढ़ें, तो यह कहना तथ्यात्मक रूप से सही नहीं है कि वे युरोप-केंद्रित थे। उनमें गैर-पाश्चात्य समाजों को काफी स्नेह व प्रशंसा के भाव से देखा गया है ताकि अन्य लोगों की कॉस्मोलॉजी का उपयोग चर्च को चुनौती देने में कर सकें। यह कहना ठीक नहीं है कि वे शेष पूरी दुनिया को खारिज करने पर आमादा थे। फ्रांसिसी रोशनख्याली का एक संदेश यह है कि आप दूसरों का उपयोग स्वयं अपने बारे में ज़्यादा आलोचनात्मक ढंग से सोचने के लिए कर सकते हैं। दरअसल, साम्राज्यवाद के उद्यम में सहभागी होने के लिए पाश्चात्य लोगों की निंदा करने की बजाय हम उनके अनुभवों का उपयोग आत्म-आलोचना के लिए, हमारे अपने धर्मों की छानबीन के लिए कर सकते हैं। उन्होंने यही किया था - वास्तव में कई चीनी व भारतीय ग्रंथों की खोज रोशनख्याली के विचारकों ने ही की थी ताकि इनका उपयोग कैथोलिक चर्च के खिलाफ कर सकें। मैं सिर्फ यही सुधार करना चाहती थी। यह कहना कि वे युरोप-केंद्रित थे अधिक से अधिक आंशिक सत्य ही है। रोशनख्याली की भारतीय जड़ों की बात मैं थोड़ी देर बाद उठाऊंगी और यह देखने की कोशिश करूंगी कि क्या

रोशनख्याली हमारे लिए एक विदेशी अवधारणा है या इसकी जड़ें हमारी अपनी संस्कृति में हैं।

शुक्लाः मैं अपनी मौजूदा स्थिति में रोशनख्याली का महत्व समझता हूं और जैसा कि हम सब जानते हैं, अतीत को वर्तमान से जोड़ने की यह दिक्कत काफी पेचीदा है। अब मीरा ने जो कुछ कहा उस पर आता हूं। खास तौर से फ्रांसीसियों के भारतीय व चीनी सभ्यताओं के प्रति संवेदनशील होने की बात। तो सिर्फ फ्रांसीसी ही क्यों, अंग्रेज़ों में भी कुछ लोग रोमांटिक मुहिम में शामिल थे, जो भारतीय सभ्यता की उपलब्धियों के प्रति बहुत संवेदनशील थे। जैसे विलियम जोन्स, जिन्होंने एशियाटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया की स्थापना की थी। फिर भी मुझे लगता है कि एक प्रक्रिया के रूप में रोशनख्याली का मुख्य रुझान वही था, जैसा मैं मार्टिन बर्नल की किताब '*फ्रॉम 1785 टु 1985*' के उद्धरण के मार्फत कहूंगाः "कहीं न कहीं वास्तविक ज़ोर यह देखने पर था कि युरोप ही वह क्षेत्र है जहां सभ्यता फल-फूल रही है और या तो जानबूझकर या इसके निहितार्थ के तौर पर ऐसे ऐतिहासिक तथ्यों को दबाया जाता था जिनसे दुनिया के अन्य भागों की सभ्यताओं को वैधता मिलती हो। ज़ाहिर है, यह साम्राज्यवादी वर्चस्व की प्रक्रिया का अंग था।"

कमल महेंद्रूः मैं होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के साथ काम करता रहा हूं। मेरी टिप्पणी सिर्फ प्रोफेसर मैथ्यूज़ या प्रोफेसर शुक्ला के प्रति नहीं है। वास्तव में मेरी टिप्पणी का सम्बंध, एक प्रेक्टिशनर की नज़र से, रोशनख्याली के पूरे मुद्दे से या उन बिंदुओं से है जिनसे रोशनख्याली का निर्माण होता है। उन बिंदुओं को समझना और उन्हें अपने कामकाज से जोड़ना महत्वपूर्ण है। बदकिस्मती से रोशनख्याली के दर्शन की उत्पत्ति की बहस में एक तरह से '*थ्रो दी बेबी विद दी बाथवॉटर*' की प्रवृत्ति रही है। यह कहकर कि रोशनख्याली युरोप-केंद्रित है, भारतीय हालात के लिए उपयुक्त नहीं है, रोशनख्याली के बिंदुओं को वास्तविक कामकाज और सामाजिक बहस में से बाहर कर दिया जाता है।

मैं इस सम्मेलन के समक्ष एक मुद्दा रखना चाहूंगा। हां, मुझे भी लगता है कि (विचारों की) उत्पत्ति कहां से हुई, उनका इतिहास क्या है, कौन-सी संस्कृति उन पर दावा जता सकती है, जैसे प्रश्न शायद महत्व के मुद्दे होंगे। मगर ज़्यादा महत्व का मुद्दा यह हैः क्या हम न्यूनतम या साझा अजेंडा पर सहमत हैं कि रोशनख्याली के ये गुणधर्म हैं जिन्हें हम विज्ञान शिक्षा के वास्तविक व्यवहार में उतारना चाहेंगे? वह साझा समझ क्या है और वह विज्ञान शिक्षा के वास्तविक व्यवहार में कैसे अनुदित होती है? और मैं प्रोफेसर शुक्ला से सहमत हूं कि इस साझा अजेंडा का स्वरूप वैश्विक होना चाहिए, इसका औचित्य सिर्फ इस आधार पर नहीं खोजा जाना चाहिए कि वह किसी खास संस्कृति या इतिहास का अंग है या नहीं।

शुक्लाः कमल ने जो कुछ कहा, उससे मेरे दिमाग में दो मुद्दे आते हैं जिन्हें वाकई समर्थन दिया जाना चाहिए। ये प्रोफेसर मैथ्यू की इस बात में शामिल थे कि धर्म निरपेक्ष या धार्मिक सत्ता को नकारना चाहिए। मैं यह कहूंगा कि धर्म निरपेक्षता और प्रकृतिवाद रोशनख्याली द्वारा उठाए गए दो मुद्दे हैं जिन्होंने यकीनन विश्व स्तर पर प्रगति में योगदान दिया है। ये गणेश को दूध पिलाओ नुमा चीज़ें प्रकृतिवाद का घोर उल्लंघन करती हैं। प्रकृतिवाद एक ऐसी चीज़ है, जो कई सैकड़ों सालों में बनी है, यह विज्ञान शिक्षा का अंग होनी चाहिए। हालांकि हो सकता है कि इसकी उत्पत्ति युरोप-केंद्रित रही हो मगर इसकी उपयोगिता वैश्विक है, इसका सम्बंध प्रगतिशील वैश्वीकरण से है। तो धर्म निरपेक्षता और प्रकृतिवाद दो ऐसे मुद्दे हैं जिन्हें पक्के तौर पर होना चाहिए।

नरसिंहनः मैं नेशनल इंस्टूट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज़, बैंगलोर से हूं। मैं दो टिप्पणियां करना चाहता हूं। एक तो इस शब्द युरोप-केंद्रिकता पर। मेरा ख्याल है कि यह शब्द सबसे पहले नीडहैम ने इस्तेमाल किया था और चीन की सभ्यता व इतिहास के अध्ययन के संदर्भ में लोकप्रिय बनाया था। नीडहैम इस बात के प्रति बहुत सचेत थे कि वे युरोप-केंद्रिकता शब्द का उपयोग इसलिए कर रहे हैं क्योंकि युरोप के संदर्भ में विज्ञान के अन्य इतिहासकारों ने कतिपय टिप्पणियां की थीं। कुछ उद्धरण देना मुनासिब रहेगा। अपने आलेखों के संग्रह '*दी ग्रैण्ड टाइट्रेशन*' के पहले आलेख में ही वे विज्ञान के इतिहासकर गिलेस्पी का ज़िक्र करते हैं; गिलेस्पी ने आशंका व्यक्त की थी कि यदि युरोपीय विज्ञान अन्यत्र फैला और यदि गैर-युरोपीय लोग इसको अपनाने लगे तो इस युरोपियन योगदान का दुरुपयोग होगा या इसे नकारात्मक ढंग से समझा जाएगा। इस तरह की शंकाएं सिर्फ गिलेस्पी ने ही नहीं कई अन्य लोगों ने भी व्यक्त की थीं। तो युरोपीय विरासत एक ऐसी चीज़ है जिसके साथ हमें जूझना होगा। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि हम इसे चुनौती दें या इसकी जगह किसी और किस्म की 'केंद्रिकता' को स्थापित करें मगर मैं इतिहास की इस व्याख्या को रेखांकित करना चाहता हूं।

हो सकता है कि प्रोफेसर मैथ्यूज़ के पास समय की कमी थी, मगर मुझे लगता है कि उन्होंने वैज्ञानिक क्रांति और उसके बाद आई रोशनख्याली का बहुत सरलीकृत प्रस्तुतीकरण किया। रोशनख्याली के दर्शन में कई विरोधाभास थे।

इसका एक उदाहरण यह है कि लॉके एक ओर तो खुद को सहिष्णुता और प्रजातंत्र के हिमायती के रूप में पेश करते हैं, मगर उन लोगों के बारे में घोर नकारात्मक दृष्टिकोण रखते थे जो युरोपी साम्राज्यवाद के कब्ज़े में आ रहे थे। और यही बात हमें मिल में नज़र आती है।

मैथ्यूज़ः टिप्पणी के लिए धन्यवाद। जी हां, प्रस्तुतीकरण बहुत संक्षिप्त था। मूल पर्चा कहीं ज़्यादा सघन है और उसमें यह बताने की कोशिश की गई है कि रोशनख्याली के महान विचारकों के बीच अंतर्विरोध कौन-से हैं। न्यूटन भी इनमें शामिल हैं। न्यूटन घोर फिरकापरस्त थे। उन्हें रोमन कैथोलिक्स से नफरत थी। जब न्यूटन के इर्द गिर्द के विद्वान लोग रोमन कैथोलिक्स को कैम्ब्रिज में प्रवेश देने के लिए अभियान चला रहे थे, तब महान आइज़ैक न्यूटन, रोशनख्याली के प्रवर्तक, कैम्ब्रिज के प्रवेश द्वार पर खड़े होकर कह रहे थे कि कोई रोमन कैथोलिक कैम्ब्रिज में नहीं घुसेगा। तो आप जानते ही हैं कि लॉके, न्यूटन समेत सभी व्यक्तियों की अपनी सीमाएं होती हैं मगर यह रोशनख्याली के उद्यम का हिस्सा है कि सीमाओं को पहचाना जाए और उनसे नसीहत ली जाए।

मैंने अध्यक्ष से निवेदन किया था कि मुझे अपनी बात को समेटने के लिए एकाध मिनट दें ताकि यह बता सकूं कि इस व्याख्यान की शुरुआत कहां से हुई थी और मेरा ख्याल है कि इसका सम्बंध यहां आपके कामकाज से भी है। इस व्याख्यान की शुरुआत एक शोध कार्य को पढ़ते हुए हुई थी जिसमें कहा गया था कि अमरीकी विज्ञान उपाधि पूरी करने का छात्रों के ज्योतिष सम्बंधी विश्वासों पर कोई असर नहीं होता। संयुक्त राज्य के किसी विश्वविद्यालय में विज्ञान पढ़ने के लिए आए जिन छात्रों का ज्योतिष में विश्वास होता है, वे बढ़िया अंकों से उत्तीर्ण होते हैं औऱ ज्योतिष में उनका विश्वास भी बरकरार रहता है। मेरे लिए इसका मतलब यही था कि उनकी विज्ञान शिक्षा ठीक से नहीं हुई है। उनकी विज्ञान शिक्षा ने उन्हें ठगा था। अब मुद्दा यह है कि कुछ लोग शायद सही ही कहेंगे कि "अरे भई, विज्ञान शिक्षा का सम्बंध तो सिर्फ तकनीकों से है, सूत्रों के खेल से है, उपकरणों से अपना मनचाहा काम करवाने और भविष्यवाणियां करने से है। आप चाहे ज्योतिष में विश्वास करते रहें, हमारी बला से - विज्ञान के कोर्स को इससे क्या लेना-देना।" यदि आप मॉर्मोनिज़्म (एक ईसाई पंथ) जैसी किसी बेवकूफी में विश्वास करते हैं, तो कोई बात नहीं, आप मॉर्मोनिज़्म में यकीन करते हुए विज्ञान कोर्स में दाखिला ले सकते हैं और मॉर्मोनिज़्म में अपने विश्वास को बरकरार रखते हुए विज्ञान की उपाधि ले सकते हैं। आस्थाओं का एकदम बेवकूफाना गट्ठर है यह मगर इससे विज्ञान उपाधि पर कोई असर नहीं पड़ता।

यह एक जायज़ नज़रिया है। मेरा अपना मत है कि विज्ञान शिक्षा का कुछ असर तो विज्ञान से बाहर, प्रयोगशाला से बाहर के विश्वासों और क्रियाओं पर भी झलकना चाहिए, और यदि ऐसा नहीं होता तो ऐसी विज्ञान शिक्षा दोषपूर्ण है। सबसे पहला बड़ा विभाजन उन लोगों के बीच है जो यह मानते हैं कि ऐसा असर होना चाहिए और वे लोग जो सोचते हैं, "अरे नहीं, विज्ञान तो विज्ञान है और इसका अन्यत्र प्रभावों से कोई ताल्लुक नहीं है। हो सकता है कि हम बढ़िया विज्ञान शिक्षा दें और जो अमरीकी छात्र अमरीकी विश्वविद्यालयों में ज्योतिष पर विश्वास के साथ आए थे, और उसी विश्वास के साथ उत्तीर्ण हो गए, तो भी उनकी विज्ञान शिक्षा बढ़िया हुई है।"

खैर, मुझे लगता है कि यहां इस विज्ञान शिक्षा सम्मेलन का सम्बंध (विज्ञान शिक्षा के) इन्हीं विकल्पों से है। मैं अपनी भूमिका में यह कहना चाहता था मगर कहना भूल गया। अब यह कहने का अवसर मिलने के लिए मैं शुक्रगुज़ार हूं।

एन. पंचापकेसनः मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में भौतिकी पढ़ाता था और अब रिटायर हो चुका हूं। मेरी एक टिप्पणी और एक सवाल है। टिप्पणी प्रोफेसर मैथ्यूज़ के व्याख्यान पर है। इस सबसे यह आशय निकलता है कि छात्रों में मूल्यों का निर्माण करना और एक संस्कृति का निर्माण करना कहीं न कहीं विज्ञान शिक्षा का मकसद है, जबकि मेरा मत है कि विज्ञान शिक्षा का उद्देश्य कुछ और ही है। वह वैज्ञानिक जागरूकता और वैज्ञानिक हुनर पैदा करना चाहती है। और वह वास्तव में मूल्यों की नैतिक प्रणाली या किसी संस्कृति का निर्माण नहीं करने वाली है। जब मैथ्यूज़ कहते हैं कि रोशनख्याली वैज्ञानिक प्रगति में योगदान देती है, और वैज्ञानिक प्रगति संस्कृति में योगदान देती है, तो मैं उनसे पूरी तरह सहमत हूं। मगर किसी छात्र में नैतिक नज़रिए का निर्माण विज्ञान शिक्षा का अंग नहीं है। वह आचार नीति और सामाजिक विज्ञान का हिस्सा है। यकीनन विज्ञान का योगदान सामाजिक विज्ञान का अंग होना चाहिए और रोशनख्याली उन लोगों के लिए एक अजेंडा होना चाहिए जो नैतिकता का और इस बात का अध्ययन करते हैं कि कैसे जीएं। इसी प्रकार से ज्योतिष को लेकर उनकी टिप्पणी को लें। यह ज़रूरी नहीं है कि विज्ञान आपको बताएगा कि निर्वाण कैसे प्राप्त करें। इस मामले में एक व्यापक और विविधतापूर्ण दायरा है, और ज्योतिष शायद धर्म से जुड़ जाए, तब शायद दिक्कत होगी।

मेरा सवाल विशिष्ट है। क्या रोशनख्याली मानव की समूची विश्व दृष्टि का विवरण प्रस्तुत कर देती है या क्या प्रेम, प्रार्थना, परमानंद जैसी अन्य चीज़ों और जैसा कि प्रोफेसर शुक्ला ने कहा, व्यक्तिनिष्ठता के लिए भी कोई जगह है? क्या ये चीज़ें अलग से शामिल होंगी या आपकी रोशनख्याली इन्सानों की पूरी विश्व दृष्टि का समावेश कर लेती है?

मैथ्यूज़ः एक बार फिर, सवाल के लिए शुक्रिया। मेरा विश्वास है कि रोशनख्याली संपूर्ण तस्वीर का समावेश करती है। उदाहरण के लिए, यह निश्चित तौर पर इस दावे से इत्तफाक नहीं रखती कि कोई ईश्वर प्रार्थना का जवाब देता है। यह यकीनन इस दावे से असहमत है कि मैं प्रार्थना करूं, या हम सब प्रार्थना करें तो बरसात करवा सकते हैं। यह संभव है कि रोशनख्याली का कोई विचारक प्रार्थना से सहमत होगा बशर्ते कि प्रार्थना की नई व्याख्या कमोबेश प्रकृतिवादी ढंग से की जाए - शांत समय के रूप में, मनन के रूप में, या किसी अन्य चीज़ के रूप में। इसी प्रकार से प्रेम है। रोशनख्याली के विचारकों, मुझे भी शामिल कर लीजिए, को प्रेम हो जाता है और प्रेम टूट जाता है। यदि आप प्रेम को 'समझना' चाहते हैं तो आपको इसे वैज्ञानिक ढंग से ही समझना होगा। आपको किसी तरह से प्रमाण जुटाने होंगे। आपको किसी तरह से लोगों से बातचीत करनी होगी। आप अंतर्दृष्टि या अंतर्प्रज्ञा (introspection, intuiton) से प्रेम को नहीं समझ सकते। आप कह सकते हैं कि उम्र बढ़ने के साथ मैं इन बातों को लेकर ज़्यादा सख्तमिज़ाज होता जा रहा हूं। एक श्रद्धालु रोमन कैथोलिक बचपन से गुज़रा हूं, तो अब मैं यह कहने में बहुत अड़चन महसूस करता हूं कि रोशनख्याल विश्व दृष्टि से बाहर किसी चीज़ के लिए कोई जगह है।

मोहननः मेरा ख्याल है कि हमने जो बहस शुरू की है, वह पूरे सम्मेलन में जारी रहने वाली है। बहस का सम्बंध इस बात से है कि वैज्ञानिक खोजबीन की भावना क्या है। सवाल यह हैः आप क्यों मानते हैं कि ज्योतिष सत्य है? यदि आप ज्योतिष को इसलिए सत्य मानते हैं क्योंकि हमें बताया गया है कि यह सत्य है, तो यह स्पष्ट तौर पर अवैज्ञानिक है। यदि आप ज्योतिष को इसलिए सत्य मानते हैं क्योंकि आपने प्रमाण देखे हैं - पता नहीं किसी ने वास्तव में ज्योतिष पर शोध किया है या नहीं, पर मान लीजिए आप करते हैं और पाते हैं कि इस बात के प्रमाण हैं कि यह सत्य है। तब मुझे पता नहीं कि क्यों इसे वैज्ञानिक न माना जाए?

तो, मुझे लगता है कि यहां हमने जिन सवालों की चर्चा की है, उनमें वैज्ञानिक ज्ञान और वैज्ञानिक खोजबीन के बीच अंतर नहीं किया गया है।

जिन चीज़ों को हम आज वैज्ञानिक ज्ञान मानते हैं, उनमें से कई आगामी पांच, दस या सौ सालों में अज्ञान या गलत साबित होंगी। मगर वैज्ञानिक खोजबीन की भावना जारी रहेगी। यदि आप वैज्ञानिक खोज की भावना को शंका करने, सवाल पूछने, आत्म-आलोचना वगैरह से और कारण आधारित निष्कर्षों से जोड़कर देखें, तो कोई कारण नहीं कि क्यों इसे प्रेम, नैतिकता, धर्म वगैरह पर लागू नहीं किया जा सकता। खैर, इस समय मुझे इतना ही सूझ रहा है। जैसा कि मैंने कहा, उम्मीद करें कि सम्मेलन में आने वाले दिनों में हम इन सवालों की छानबीन जारी रखेंगे। शुक्रिया।